नियमसार। गाथा का अन्तिम भाग है। १०३ गाथा है न, उसका....

इसी प्रकार श्री प्रवचनसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत तत्त्वदीपिका नामक) टीका में (१२वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:— वहाँ आया है।

द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि,
द्रव्यं मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम्।
तस्मान्मुमुक्षु-रधिरोहतु मोक्षमार्गं,
द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य।।

चरण द्रव्यानुसार होता है... प्रत्याख्यान का अधिकार है न? पच्चखाण का अधिकार है। पच्चखाण है, वह चारित्र है और चारित्र जो है, वह स्वरूप जो चैतन्य अनन्त बल का धनी; जिसमें अपने अनन्त गुण हैं, उसका जिसे अनन्त विश्वास है। श्रद्धा नाम का गुण। शक्ति में समकित और चारित्र नहीं लिया है, ४७ शक्ति। परन्तु सुखशक्ति में वे आ जाते हैं। ४७ शक्तियाँ है न? उसमें सम्यग्दर्शन और चारित्र दोनों आ जाते हैं। इसलिए यहाँ ऐसा कहना है कि आत्मा में अनन्त बल है। राग से पराजित हो जाए, ऐसा वह नहीं है। आहाहा! उसे विश्वास नहीं है। अनन्त-अनन्त बल, अनन्त ज्ञान का बल, अनन्त दर्शन का बल, अनन्त श्रद्धा का बल, विश्वास का बल, अनन्त चारित्र का बल, अनन्त वीर्य का बल—

ऐसे अनन्त बलवाला मैं आत्मा हूँ—ऐसा भगवान कहते हैं। आत्मा कैसा होता है, इसकी खबर भी नहीं होती। जय नारायण! आहाहा! समझ में आया?

आत्मा में अनन्त विश्वास-श्रद्धा नाम का एक गुण है, कि जो अनन्त विश्वास है। अनन्त गुण हैं, एक-एक गुण अनन्त है - शक्तिवन्त है। इन सब गुणों का जिसमें अनन्त-अनन्त विश्वास और अनन्त-अनन्त बल है। आहाहा! यह आत्मा **चरण द्रव्यानुसार होता है...** अर्थात् क्या कहते हैं? प्रत्याख्यान का अधिकार है न? उसका चरण अर्थात् निर्मल परिणति। पाँचवें या छठवें गुणस्थान में जो निर्मल परिणति होती है, उसके प्रमाण में द्रव्यानुसारी होता है। द्रव्यानुसार जो निर्मल परिणति है, उसके प्रमाण में उसे राग की मन्दता का चरण होता है। फिर से।

चरण अर्थात् राग की मन्दता की योग्यता। छठवें गुणस्थान में नग्न-दिगम्बर मुनि हों तो उनका चरण अर्थात् राग की मन्दता, पंच महाव्रत की, कि वस्त्र नहीं प्रयोग करना, वस्त्र नहीं लेना, ऐसी जो मन्दता वह उसके अनुसार पवित्रता की परिणति है। आहाहा! ऐसा है। यह **चरण द्रव्यानुसार...** अर्थात् द्रव्य नहीं लेना। द्रव्य तो त्रिकाली है। अनन्त बल का धनी भगवान अनन्त विश्वास, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त वीर्य। एक-एक वीर्य अनन्त-अनन्त गुण में व्याप्त है। तो अनन्त ज्ञान वीर्य, अनन्त दर्शन वीर्य, अनन्त सुख वीर्य, अनन्त शान्ति वीर्य, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे अनुसरण कर जो परिणति होती है, उसके प्रमाण में चरण होता है। यहाँ भाषा चरण से ली है।

मुनि को छठवें (गुणस्थान) में राग की मन्दता की योग्यता इतनी ही होती है कि पंच महाव्रत (होते हैं), उसे वस्त्र लूँ या उसके लिये बनाया हुआ आहार लूँ, ऐसा चरण अर्थात् राग की मन्दता से यह विशेष बात उसे नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! चरण अर्थात् राग की मन्दता, उसकी क्रिया, उसका पवित्र जो द्रव्य परिणमित हुआ है, उस पवित्रता के प्रमाण में राग की मन्दता होती है। मुनिपना विशेष प्रगट हुआ और चरण में तीव्र राग हो, वस्त्र ग्रहण का, पात्र ग्रहण का, उसके लिये बनाया हुआ आहार लेने का (राग हो) तो ऐसा चरण उसे नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह प्रत्याख्यान है।

प्रत्याख्यान की परिणति ऐसी होती है कि उसे अनुसरण कर राग की मन्दता होती है, पहला यहाँ से लिया है। कि राग की मन्दता इतनी उस भूमिका में होती है कि जिससे

द्रव्य के अनुसार जो शुद्धपरिणति प्रगट हुई है, उसके प्रमाण में राग की मन्दता होती है। समझ में आया? आहाहा! प्रवचनसार, ज्ञेय अधिकार की अन्तिम गाथा है, अन्तिम गाथा है। सूक्ष्म बात है, भाई! प्रत्याख्यान उसे कहते हैं कि जिसे राग की मन्दता... यहाँ जिसे प्रत्याख्यान हुआ है, आनन्दस्वरूप में रमता है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द में रमता है, वह रमता है, उसे प्रत्याख्यान। वह प्रत्याख्यान चरणानुसार होता है। उसके प्रमाण में उसकी रग की मन्दता इतनी होती है। राग की मन्दता के अनुसार, उसके कारण नहीं। आहाहा!

प्रत्याख्यान उसे होता है कि जिसे राग की मन्दता जो छठवें गुणस्थान की भूमिका में होती है, उस भूमिका के अनुसार यहाँ शुद्ध परिणति होती है। यह पहला अर्थ है। कहो, समझ में आया इसमें? कोई कहता है कि हमें शुद्धपरिणति प्रत्याख्यान है, परन्तु हम वस्त्र और पात्र प्रयोग करते हैं तो वह मिथ्यादृष्टि है। उसे चरण द्रव्यानुसारी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! कठिन है। लोगों को कहाँ पड़ी है। पाप के कारण पूरे दिन कहाँ निवृत्त होता है? धन्धे के पाप, स्त्री, पुत्र को सम्हालना। दो-पाँच करोड़ रुपये इकट्ठे हो जाएँ, पाप में खर्च करे और उसकी महिमा हो जाए। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि पच्चखाण की दशा अर्थात् चारित्र की दशा ऐसी होती है कि **चरण द्रव्यानुसार होता है...** यह जितनी शुद्ध परिणति प्रगट हुई हो, उसके प्रमाण में चरण अर्थात् राग की मन्दता होती है। है न? पहला चरण है, वह चरणानुयोग का चरण है और दूसरा द्रव्यानुयोग। वह द्रव्य की शुद्धि है। द्रव्य अनुसार ऐसा नहीं। द्रव्य को अनुसरण कर होनेवाली परिणति, वह यहाँ द्रव्यानुसार लेना है। समझ में आया? आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, बापू! जन्म-मरण कर-करके कचूमर निकल गया है। अनन्त बार जन्मा है। करोड़पति, अरबोंपति अनन्त बार हुआ और मरकर वापस सूकर में, कौवे, कुत्ते में अवतरित हुआ और फिर नरक और निगोद की चार गतियों में भटका है। आहाहा! चिमनभाई! यहाँ तो मानो पाँच-पचास लाख मिले, वहाँ तो ओहोहो! मानो हम क्या बढ़ गये और क्या? पाप में बढ़ गया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि बढ़ा हुआ हो, उसका चरण उसे ऐसा होता है कि राग की मन्दता के प्रमाण में शुद्ध की परिणति बढ़ी हुई होती है। चन्दुभाई! समझ में आया? ऐसा सीधा अर्थ कठिन पड़ता है। वस्तु ऐसी है। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, यह तो

मिट्टी, धूल है। यह कहीं आत्मा नहीं है। अन्दर कर्म है, वह जड़-धूल है। अन्दर कोई दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वह पुण्य है। हिंसा, झूठ, कमाना, भोगना, दुकान का धन्धा, वह पाप है। परन्तु उन पुण्य और पाप से भिन्न अन्दर आत्मा है। आहाहा! उस आत्मा का **चरण द्रव्यानुसार होता है...** वह आत्मा का चरण अर्थात् राग की मन्दता, द्रव्य की शुद्धि की परिणति प्रमाण होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अन्तर में चौथा गुणस्थान हो और बाहर में २८ मूलगुण होवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तब द्रव्यलिंगी कहलाता है। उसे द्रव्यलिंग कहते हैं। द्रव्यलिंग के तीन प्रकार हैं। एक तो बाहर से साधु की क्रिया करता हो। वह साधु कौन? नग्न-दिगम्बर हो वह। वस्त्रवाले साधु को जैनदर्शन में नहीं गिना है। वह साधु नहीं है। यहाँ तो वस्त्ररहित होकर, नग्नपना होकर पंच महाव्रत पालन करता हो, परन्तु दृष्टि मिथ्यात्व हो। वह राग की क्रिया है, धर्म है ऐसा माने तो वह मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी है। एक बात। दूसरा जिसे आत्मज्ञान है कि मैं शुद्ध हूँ। यह राग की मन्दता बन्ध का कारण है। पंच महाव्रत के परिणाम भी बन्ध का कारण है ऐसा जानता है परन्तु क्रिया साधुपने की, व्यवहार की करता है। अन्दर में छठवाँ गुणस्थान नहीं है। अन्दर में समकित है और बाहर में क्रिया बराबर चरण द्रव्यानुसार जो यहाँ कहते हैं, उस प्रकार करता है, उसे भी द्रव्यलिंगी कहा जाता है। और तीसरा, अन्दर में पाँचवाँ गुणस्थान हो, क्रिया सब साधु की हो। नग्न-दिगम्बर, वस्त्ररहित, जंगल में बसे। ऐसा आचरण हो परन्तु अन्दर पाँचवाँ गुणस्थान हो, उसे भी द्रव्यलिंगी कहते हैं। आहाहा!

भावलिंगी तो उसे कहते हैं, चैतन्य भगवान अन्दर अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द, अनन्त सुख और अनन्त शान्ति, अनन्त जिसका बल है। जिसके विश्वास से अनन्त बल प्रगट होता है और अनन्त बलवाला है, ऐसा उसका विश्वास आता है। उस अनन्त बल के कारण वह राग के आधीन नहीं होता। आहाहा! सम्यग्दर्शन-अभी तो धर्म की पहली दृष्टि। वह यहाँ कहाँ है? अभी तो सब बातें हैं। आहाहा! अन्तर की आनन्द की रमणता में, सम्यग्दर्शन की क्रीड़ा अन्दर में होती है, स्वरूप का भान होकर (होती है), तथापि क्रिया में तीव्र राग की मन्दता उसके प्रमाण में होती है तो उसके प्रमाण में राग की मन्दता विषय आदि हों, तथापि उसकी राग की मन्दता

प्रमाण द्रव्य की शुद्धि होती है। उसके द्रव्य की शुद्धि पाँचवें और छठवें गुणस्थान जैसी नहीं होती। तीव्र विषय, भोग, वासना आदि होते हैं, आर्त्त, रौद्रध्यान आदि होते हैं, तो ऐसा चरण जहाँ होता है, वहाँ आगे अन्दर में शुद्धि की प्रवृत्ति जैसी ऊँची चाहिए, वैसी नहीं होती। निचली भूमिका प्रमाण वह शुद्धि होती है। उस शुभ के कारण शुद्धि होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! दुनिया से सब उल्टा है। दुनिया उल्टी है तो उससे यह उल्टा है। उल्टे घड़े में उल्टा... पड़े। उल्टा घड़ा रखे तो सुल्टा बैठता नहीं। उल्टे पर उल्टा ही बैठता है। इसी प्रकार जिसने पहले से आत्मदर्शन क्या चीज़ है? वह रागरहित अन्दर निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य की दृष्टि क्या है? इसकी खबर बिना उल्टे तर्क करे, उसके सब तर्क एक-एक उल्टे ही होते हैं। आहाहा! समझ में आया? उल्टे तर्क का चरण है, वहाँ सामने मिथ्यात्व है और राग की मन्दता का प्रमाण पाँचवाँ और छठा गुणस्थान प्रमाण में हो तो अन्दर में शुद्ध परिणति की प्रत्याख्यान दशा उसके प्रमाण में होती है। आहाहा! यह एक अर्थ हुआ।

चरण द्रव्यानुसार होता है... राग की मन्दता का भाव, द्रव्य की शुद्धि के प्रमाण में होता है। यह उसका अर्थ। देवीलालजी! **और द्रव्य चरणानुसार होता है...** और द्रव्य की शुद्ध परिणति भी राग की मन्दता के प्रमाण में शुद्ध उसकी परिणति होती है। आहाहा! यहाँ शुद्ध परिणति विशेष हो और यहाँ राग की तीव्रता हो, ऐसा नहीं होता। द्रव्य अर्थात् शुद्ध परिणति, चरणानुसार और राग की मन्दतानुसार होती है। समझ में आया? यह तो तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की वाणी है। अभी तो सब वाणी-बानी लोप हो गयी है। अभी तो दया पालो, व्रत करो, तप करो, अपवास करो, सूख जाए वैसा करो। तत्त्व की तो खबर भी नहीं होती। आहाहा! यह वीतराग का वचन है। यह मुनि आढ़तिया होकर जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा!

द्रव्य अर्थात् शुद्ध परिणति। दूसरा बोल। द्रव्य अर्थात् शुद्ध परिणति लेना। शुद्ध परिणति चौथे की, पाँचवें की, छठवें की, उसके प्रमाण में राग की मन्दता होती है। समकिती की द्रव्य परिणति थोड़ी शुद्ध है, तो उसे राग चरण में कोई कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को माने, ऐसा चरण हो - यह नहीं हो सकता। समझ में आया? इसी प्रकार सच्चा श्रावक हो... यह तो सब वाड़ा के श्रावक हैं। यह तो एक भी सच्चा श्रावक नहीं है।

अन्तर... शान्तिभाई! यह कठिन पड़ेगा यह। यह तो सबको देखा है न? इस शरीर को ९० वर्ष हुए। पहले से ७२ से यह लगाया है। अठारह वर्ष की उम्र से दुकान पर। पालेज में दुकान है न? भरुच और बड़ोदरा के बीच पालेज में दुकान है। वहाँ दुकान में नौ वर्ष निकाले हैं। वहाँ मैं तो शास्त्र पढ़ता था। बहत्तर वर्ष पहले। बहत्तर से अभी तक शास्त्र वांचन। अभी ९० वर्ष हुए।

मुमुक्षु : तब श्वेताम्बर के शास्त्र पढ़ते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर शास्त्र पढ़ते थे। स्थानकवासी थे। पिताजी स्थानकवासी थे। पिताजी ढूँढिया थे। उसमें जन्म हुआ। वह पढ़ते थे परन्तु फिर अन्दर से पूर्व भव का आया। भगवान महाविदेह में प्रभु विराजते हैं, वहाँ का आया। है?

द्रव्य की शुद्ध परिणति **चरणानुसार होती है...** द्रव्य परिणति शुद्ध बहुत हो और राग की तीव्रता हो, जैसे की छठवें गुणस्थान में शुद्ध परिणति बहुत है और उसे रौद्रध्यान हो, ऐसा नहीं हो सकता। पाँचवें गुणस्थान में शुद्ध परिणति हो और उसे आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान हो सकता है। आहाहा! ऐसी बातें समझना (कठिन पड़ती है)। यह धर्म कथा। बापू! वस्तु कोई अलग है। जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ का कथन कोई अलग प्रकार का है।

द्रव्य चरणानुसार होता है... द्रव्य की शुद्ध परिणति राग की मन्दता प्रकार जितने चाहिए, उस गुणस्थान में उसके प्रमाण में होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं? सुमनभाई! पारस्परिक दूसरा। चिमनभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? उस लोहे में झट समझ में आता है। एकदम पैसे की कमाई हो जाती है। बारह महीने में पचास हजार, लाख की आमदनी हो तो ऐई.. ऐसे मानो.. आहाहा! बड़े सेठिया को मानो यह क्या है? यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि आत्मा का जो ज्ञान और श्रद्धा-दृष्टि नहीं है, वह सब दरिद्र, भिखारी है। जिसे राग के विकल्प से, दया, दान के विकल्प राग से भिन्न आत्मा, उस आत्मा की कीमत नहीं, आत्मा की महिमा नहीं, आत्मा की महिमा और प्रतीति और अनुभव नहीं, वे सब करोड़पति दरिद्री हैं। दरिद्र हैं... भिखारी हैं। भगवान को कुछ जगत की पड़ी नहीं कि करोड़पति ऐसे होंगे।

द्रव्य चरणानुसार होता है... शुद्ध परिणति के प्रमाण में चरण के अनुसार होता है। यहाँ वापस राग की जैसी मन्दता हो, उसके प्रमाण में द्रव्य की शुद्धि होती है। उससे नहीं।

यह तो मात्र ज्ञान कराते हैं। आहाहा! अन्दर है या नहीं? **इस प्रकार वे दोनों परस्पर अपेक्षासहित हैं;...** कौन दो? एक तो भगवान आत्मा शुद्ध रागरहित, विकल्परहित, निर्मलानन्द प्रभु है। उसका अनुभव और उसके आनन्द का स्वाद होता है। जघन्य श्रेणी का धर्मी, पहली श्रेणी का धर्मी, उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद होता है। उसके बिना वह धर्मी नहीं हो सकता। आहाहा! उसके स्वाद के प्रमाण में उसे राग की तीव्रता इतनी अधिक नहीं होती कि जिससे कुगुरु, कुदेव को माने। समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार वे दोनों परस्पर अपेक्षासहित हैं;... दोनों परस्पर शुद्ध परिणति और शुभभाव, आहाहा! **इसलिए या तो द्रव्य का आश्रय करके...** इसलिए या तो शुद्ध की परिणति का ज्ञान करके... आश्रय अर्थात् यहाँ ज्ञान लेना। समझ में आया? या तो द्रव्य अर्थात् शुद्ध परिणति। वीतरागी परिणति अन्दर दया, दान, भक्ति के परिणाम, वे भी राग हैं, विकार हैं; वह धर्म नहीं है। उससे रहित आत्मा की शुद्ध परिणति का आश्रय करके अर्थात् उसका ज्ञान करके। यह शुद्ध परिणति ऐसी है, ऐसा उसका ज्ञान करके और या तो चरण का आश्रय करके। राग की मन्दता अनुसार ऐसा ही होता है, उसका ज्ञान करके... आहाहा! अब यहाँ शब्द ऐसे हैं और अर्थ ऐसा है, लो! चरण का आश्रय करके। चरण का आश्रय करना है?

शुद्धस्वभाव भगवान आत्मा, ऐसे परमानन्द की मूर्ति प्रभु का ज्ञान करके कि उसे ऐसी परिणति के समय राग की मन्दता ऐसी ही होती है और या राग की मन्दता का ज्ञान करके, राग की मन्दता हो, वहाँ शुद्ध परिणति ऐसी होती है, इस प्रकार दोनों कहो **मुमुक्षु (ज्ञानी, मुनि) मोक्षमार्ग में आरोहण करो।** आहाहा! कहो। यह बहियों में आवे नहीं। सुनने जाए, वहाँ आवे नहीं। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, मिच्छामि दुक्कडम करो तत्सूत्रि करणेणम्। वह तो सब राग की क्रिया है। ऐसा तो अनन्त बार किया है। आहाहा! चिमनभाई! मैंने इससे पहले यह किया था। करते थे न! दुकान पर हम करते थे। सामायिक, प्रतिक्रमण, रात्रिभोजनत्याग। रात्रिभोजनत्याग तो ६५ के वर्ष से। ६५ के वर्ष से आजीवन चतुर्विध रात्रि आहार का त्याग है। पानी की बूँद नहीं। ६५ के वर्ष से। दीक्षा ७० के वर्ष में। दुकान पर थे, वहाँ सब वे लोग जीमते, तुम जानो, कहा – मैं सूर्यास्त से पहले भोजन कर लूँगा। दुकान में २५-३० लोग। दो दुकानें थी। आहाहा! अभ्यास तो वहाँ भी करता था। भागीदार था। भागीदार बैठा हो तो मैं पढ़ता। वह बाहर गया हो तो मुझे

दुकान में बैठना पड़ता। यह तो ६४-६५-६६ के वर्ष की बातें हैं। ६८ के वर्ष में दुकान छोड़ दी। ६८ के वर्ष में वैशाख में। दुकान चलती है। बड़ी दुकान है। चालीस लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है। अभी एक वर्ष की चार लाख की आमदनी है। चालीस लाख रुपये हैं। धूल-धूल।

मुमुक्षु : पहले महिमा करने के पश्चात् बाद में धूल कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा कहाँ की ? वह तो अंक बताया। मैं लड़कों को कहता हूँ। मेरे बुआ के लड़के भागीदार थे न। वे तो सब मर गये। यहाँ ९० वर्ष हुए। ६७ वर्ष तो दीक्षा ली थी उसे हुए। ६० और ७। वे लड़के हैं। बुआ के लड़के भागीदार थे, उनके सब लड़के नरम हैं। सबको कहते हैं कि सब यह तुमको पैसा है, दुकान घर की है... आहाहा! सौ गाँव में उगाही आठ-आठ लाख की डालते हैं। बड़ा व्यापार है। आठ लाख की तो उगाही डालते हैं। उसमें मर जाओगे कहा, हों! ध्यान रखना। लड़के नरम हैं। मनसुख और तीनों लड़के। आहाहा!

(ज्ञानी, मुनि)... यह गाथा तो कठिन आयी। इसमें शब्द ऐसे हैं न ? इसलिए आश्रय शब्द ऐसा, हों! लेना। एक तो द्रव्यानुसार में द्रव्य को शुद्ध परिणति लेना। द्रव्य नहीं लेना और चरणानुसार फिर परस्पर अपेक्षा सहित है। अब या तो द्रव्य का आश्रय अर्थात् वहाँ द्रव्य अर्थात् शुद्ध परिणति का ज्ञान। या इतनी शुद्ध परिणति यहाँ है, तो शुभराग ऐसा ही होना चाहिए। पश्चात् चरण का आश्रय करके। राग की मन्दता इतनी है तो शुद्ध परिणति निर्मल इतनी ही होनी चाहिए। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् विराजमान हैं। सीमन्धरस्वामी भगवान विराजते हैं, उनकी यह वाणी है। आहाहा! अभी तो चलती नहीं। अभी तो पूरा सब उल्टा चलता है। आहाहा!

इस प्रकार **मोक्षमार्ग में आरोहण करो।** मोक्षमार्ग में... पाठ में है ? '**मुमुक्षु-रधिरोहतु**' आहाहा! चौथे गुणस्थान में शुद्ध परिणति होती है, उसके प्रमाण में उसे युद्ध का भी भाव होता है। पाँचवें गुणस्थान में होवे तो उसे अमुक प्रमाण के राग की मन्दता होती है, छठवें गुणस्थान में सच्चे मुनि हों तो उन्हें मात्र आहार-पानी निर्दोष लेना, उनके लिये बनाया हुआ नहीं। इतने विकल्प की हद होती है। वस्त्र-पात्र लेना या यह चीज़ मुनि को हो नहीं सकती, वहाँ मुनिपना नहीं रहता। समझ में आया ?

श्लोक-१३९

और (इस १०३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(अनुष्टुप्)

चित्तत्त्वभावनासक्तमतयो यतयो यमम्।
यतन्ते यातनाशील-यम-नाशनकारणम्।।१३९।।

(हरिगीतिका)

निज आत्मा की भावना में लीन जिनकी बुद्धि है।
वे यति यम में यत्न करते दुःखद यम-नाशक अहो॥१३९॥

[श्लोकार्थः] जिनकी बुद्धि चैतन्यतत्त्व की भावना में आसक्त (रत, लीन) है, ऐसे यति यम में प्रयत्नशील रहते हैं (अर्थात् संयम में सावधान रहते हैं)—कि जो यम (-संयम) यातनाशील यम के (-दुःखमय मरण के) नाश का कारण है॥१३९॥

श्लोक -१३९ पर प्रवचन

और (इस १०३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):— वह आधार था।

चित्तत्त्वभावनासक्तमतयो यतयो यमम्।
यतन्ते यातनाशील-यम-नाशनकारणम्।।१३९।।

आहाहा! **जिनकी बुद्धि चैतन्यतत्त्व की भावना में आसक्त (रत, लीन) है...** आत्मा है न? अस्ति है न? सत्ता है न? तो सत्ता है तो स्वभाव बिना अकेली सत्ता होगी? शक्कर है और मिठास स्वभाव न हो, ऐसा कहीं होगा? इसी प्रकार आत्मा है, उसमें अनन्त स्वभाव है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द ऐसा अनन्त स्वभाव है। उसमें चैतन्यस्वभाव मुख्य है। आहाहा! यह (शरीर) तो हड्डियाँ, चमड़ा है। अन्दर पुण्य-पाप

के भाव उठते हैं, वह तो विकार है। नव तत्त्व में वह विकार तो भिन्न तत्त्व है, आत्मा भिन्न तत्त्व है। आहाहा!

चैतन्यतत्त्व की भावना में... आहाहा! जानने-देखनेवाला ऐसा मैं। उसमें जिसकी बुद्धि आसक्त है। जानने-देखनेवाला मैं। मैं किसी का करनेवाला नहीं और मैं किसी से लेनेवाला नहीं। आहाहा! इसमें पिता-पुत्र भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं। ऐई! सुमनभाई! पीछे प्रश्न चलता है। आकर पैर तो दाबते हैं सुमनभाई। आठ हजार का वेतन है। छह थे, उसमें से आठ हजार महीने किये हैं। इनका लड़का है। आकर पैर दबाता है। पैर दबावे, वह तो जड़ है, मिट्टी है। मिट्टी को क्या करे?

मुमुक्षु : उसमें दिन क्या वले

पूज्य गुरुदेवश्री : दिन क्या वले? धूल। आहाहा! बेचारा वह लड़का मर गया नहीं? उसकी माँ की सेवा करके मर गया, भाई! वह लड़का मनसुख हमेशा उसकी माँ के पैर दबाता। पैंतीस वर्ष की उम्र। अब बेचारे को क्या हुआ? कौन जाने? मंजिल, चौथी मंजिल। मर गया। पहले हेमरेज हो गया और फिर देह छूट गयी। कल सवेरे वे पैसे नहीं निकाले थे? आज-आज। उसके पीछे ५५५५५ निकाले थे। ५५५५५। पच्चीस हजार दूसरे गुप्त निकालनेवाले हैं। पिचहत्तर लाख रुपये उसके लड़के के नाम से। स्त्री नहीं है। विवाह किया परन्तु वह स्त्री ठीक निकली नहीं तो छोड़ दी। यह दशा। आहाहा! यहाँ आता था, सुनता था, बैठता था। मस्तिष्क में जरा अस्थिरता थी। पढतु-मुखतु हो गया। पाँच भाई। उसमें अन्तिम स्थिति ऐसी होने की। आहाहा! ऐसे अनन्त मरण किये हैं। ऐसे इस जीव ने अनन्त मरण किये हैं, प्रभु! आहाहा! अनन्त-अनन्त काल हुआ, ऐसे भटकते-भटकते। ऐसे भूतकाल में देखे तो भव बिना का कभी रहा है? गत काल में ऐसे देखो तो भव... भव... भव... भव... भव... भव... भव... कोई कुत्ते का, कौवे का, नरक का, निगोद का, सूकर का, ऐसे अनन्त भव किये हैं। आहाहा! अभी मनुष्यपना आया, वहाँ सब भूल गया। वह वहाँ रहा और यह यहाँ। मेरा होवे वह ठीक। भविष्य के लिये कहाँ जाना है तू तो अनादि-अनन्त है। शरीर तो नाश होगा, यह तो राख होगी। फिर आत्मा का क्या?

मुमुक्षु : ऐसा विचार करने का समय कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार करने का समय नहीं। ऐई! सुमनभाई! महीने में आठ हजार

का वेतन है न? वेतन तो पन्द्रह हजार के वेतनवाले बहुत पड़े हैं। मुम्बई में हैं। अपने दलीचन्दभाई का एक लड़का नहीं? मोरबीवाला। एक को पन्द्रह हजार और एक को दस हजार वेतन। वहाँ वह टाटा है न? तीनों भाई का चलता है न। एक बार वहाँ गये थे। उसमें क्या?

इस आत्मा को जाने बिना सब व्यर्थ है। एक बिना शून्य निकलनेवाले हैं। लाख शून्य किये हों परन्तु एक नहीं, तो संख्या में नहीं आते। इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति प्रभु, जानन-देखन आनन्दकन्द प्रभु की दृष्टि और अनुभव नहीं, तब तक सब व्यर्थ है। उसके व्रत, तप, भक्ति, पूजा वह सब रण में शोर मचाने जैसा है। समझ में आया? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, **जिनकी बुद्धि चैतन्यतत्त्व की भावना...** भावना शब्द से एकाग्रता। मैं ज्ञायकस्वरूप तो जानने-देखनेवाला आनन्द। मेरा ज्ञान अनन्त, मेरा दर्शन अनन्त, मेरा वीर्य अनन्त, मैं अनन्त विश्वासु व्यक्ति हूँ। अनन्त का विश्वास मैं हूँ। आहाहा! बाहर की संख्या नहीं। आत्मा के अनन्त-अनन्त गुण भगवान सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने कहे हैं। उन अनन्त गुण का विश्वासु मैं हूँ ऐसी **भावना में आसक्त...** आहाहा!

ऐसे यति... यति अर्थात् मुनि। वे यति नहीं, हों! यह जतड़ा-जति। यति क्यों कहा? अन्दर आत्मा के आनन्द का यत्न करें, वे यति। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है। आहाहा! उसे पुण्य और पाप के राग से भिन्न करके स्वरूप का यत्न करे, वह यति है। **ऐसे यति यम में प्रयत्नशील रहते हैं...** यम अर्थात् संयम। आहाहा! अपने स्वरूप में वे प्रयत्नशील हैं। बाह्य क्रियाकाण्ड के आडम्बर से रहित हैं। आहाहा! अन्तर में आनन्द का नाथ प्रभु, सच्चिदानन्द अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। जिसमें अनन्त बल है। उस अनन्त बल के कारण वह जिसे अनन्त बल का अनन्त विश्वास आया है... आहाहा! अनन्त गुण और उसके अनन्त गुण में अनन्त बल है, ऐसा विश्वास आया... आहाहा! वह अन्दर में प्रयत्नशील है। समझ में आया? सामने है या नहीं? यह कहीं यहाँ का नहीं है। सोनगढ़ का नहीं है। आहाहा!

प्रयत्नशील... भाषा कैसी है? **यति यम में प्रयत्नशील रहते हैं...** एक तो यति और यम में अर्थात् संयम में। प्रयत्नशील रहते हैं। **(अर्थात् संयम में सावधान रहते हैं)—कि जो यम...** आहाहा! शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर आनन्द के नाथ में मुनि रमते हैं, मुनि उन्हें कहते हैं। वह **यम (-संयम) यातनाशील यम के (-दुःखमय मरण के) नाश का**

कारण है... भाषा देखो! वह यम अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान का संयम अन्दर। संयम अर्थात् सम्यक् प्रकार से समकितसहित यम। समकितरहित सब व्यर्थ। इसलिए संयम। सम+यम। सम्यक् दर्शन अर्थात् आत्मा का अनुभव। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद। उसके सहित जो अन्दर यत्न में पड़े हैं, वह यम। भाषा यत्न की प्रयोग की है।

यातनाशील यम... यातनाशील यम। यह यम यातनाशील मरण के **नाश का कारण है।** आहाहा! ऐसी बातें, लो! कैसी है? घर में पूछे कि क्या सुना? कुछ कहते थे कौन जाने। ऐसा... ऐसा... ऐसा... वह कथा होवे तो याद भी रहे। प्रभु! यह कथा, धर्म कथा है। बाकी सब विकथाएँ हैं। आहाहा! पुण्य से धर्म माने, व्रत से धर्म माने, वह सब विकथाएँ हैं। वह धर्म कथा नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं **यम (-संयम)...** सम्यग्दर्शनसहित अन्दर स्वरूप में यत्न ऐसा संयम। यम उस यम के **नाश का कारण है।** यम, यम के नाश का कारण है। पहला यम वह संयम। दूसरा यम वह दुःखमय मरण। यम, यम के नाश का कारण है। आहाहा! है या नहीं?

यम... आहाहा! अन्तरस्वरूप आनन्द का नाथ, उसे जगाकर उसमें एकाकार हुआ है, ऐसा यम। यातना, पीड़ा के स्वभाववाला यम। पीड़ा अर्थात् दुःखमय। यातनाशील है न? उसका अर्थ दुःखमय कहा। यातना अर्थात् दुःखरूप स्वभाव, ऐसा जो मरण, उसे यह **यम (-संयम) यातनाशील यम के (-दुःखमय मरण के) नाश का कारण है।** आहाहा! संयम है न? सम, यम। सम्यग्दर्शन। पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव का जिसे अन्दर स्वाद आया है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है। यह तुम्हारे मैसूर के, धूल के स्वाद तो जड़ के हैं, उन्हें कहीं उनका स्वाद नहीं आता। यह रसगुल्ला और मैसूर को क्या कहते हैं तुम्हारे? पतरबेलिया-अरबी के पत्ते के पतरबेलिया। चने के आटे में टुकड़े डालकर बनाते हैं न? दूधपाक और फिर खाते हैं। वह खाता नहीं-आत्मा खा नहीं सकता, वह तो जड़ की क्रिया है। उसमें एक राग करता है, उसे अनुभव करता है। आहाहा! यह राग को अनुभव करता है। खाने की क्रिया यह नहीं कर सकता। आहाहा! पागल को तो पागल जैसा लगे, ऐसा है। आहाहा! खा नहीं सकता। अरे! आत्मा हिल नहीं सकता, आत्मा बोल नहीं सकता। यह तो भाषा जड़ है। आहाहा! ऐसा जो संयम अन्दर। पर का कुछ करना नहीं और अन्दर स्व के यत्न में पड़ा है, ऐसा यम। यातना अर्थात् दुःखरूप स्वभाववाला मरण, उसका यह यम नाश का कारण है। आहाहा! लो, यह गाथा पूरी हुई।

गाथा-१०४

सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि।
आसाए वोसरित्ता णं समाहि पडिवज्जए।।१०४।।

साम्यं मे सर्वभूतेषु वैरं मह्यं न केनचित्।
आशां उत्सृज्य नूनं समाधिः प्रतिपद्यते।।१०४।।

इहान्तर्मुखस्य परमतपोधनस्य भावशुद्धिरुक्ता। विमुक्तसकलेन्द्रियव्यापारस्य मम भेद-विज्ञानिष्वज्ञानिषु च समता; मित्रामित्रपरिणतेरभावान्न मे केनचिज्जनेन सह वैरं; सहजवैराग्य परिणतेः न मे काप्याशा विद्यते; परमसमरसीभावसनाथपरमसमाधिं प्रपद्येऽहमिति।

तथा चोक्तं श्री योगीन्द्रदेवैः ह्न

(वसंततिलका)

मुक्त्वालसत्वमधिसत्त्वबलोपपन्नः,
स्मृत्वा परां च समतां कुलदेवतां त्वम्।
सज्ज्ञानचक्रमिदमङ्ग गृहाण तूर्ण-
मज्ञान-मन्त्रि-युत-मोह-रिपूपमर्दि।।

तथाहि ह्न

समता मुझे सब जीव प्रति वैर न किसी के प्रति रहा।
मैं छोड़ आशा सर्वतः धारण समाधि कर रहा॥१०४॥

अन्वयार्थ : [सर्वभूतेषु] सर्व जीवों के प्रति [मे] मुझे [साम्यं] समता है, [मह्यं] मुझे [केनचित्] किसी के साथ [वैरं न] बैर नहीं है; [नूनम्] वास्तव में [आशाम् उत्सृज्य] आशा को छोड़कर [समाधिः प्रतिपद्यते] मैं समाधि को प्राप्त करता हूँ।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) अन्तर्मुख परम-तपोधन की भावशुद्धि का कथन है।

जिसने समस्त इन्द्रियों के व्यापार को छोड़ा है, ऐसे मुझे भेदविज्ञानियों तथा अज्ञानियों के प्रति समता है; मित्र-अमित्ररूप (मित्ररूप अथवा शत्रुरूप) परिणति के अभाव के कारण मुझे किसी प्राणी के साथ बैर नहीं है; सहज वैराग्यपरिणति के कारण मुझे कोई भी आशा नहीं वर्तती; परम समरसीभावसंयुक्त परम समाधि का मैं आश्रय करता हूँ (अर्थात् परम समाधि को प्राप्त करता हूँ)।

इसी प्रकार श्री योगीन्द्रदेव ने (अमृताशीति में २१ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि: —

(हरिगीतिका)

हे भाई! बल सम्पन्न स्वाभाविक अहो आलस्य तज।
उत्कृष्ट समतामयी कुलदेवी सदा स्मरण कर॥
अज्ञान मन्त्री सहित शत्रु मोह नृप नाशक सदा।
चक्र सम्यग्ज्ञानरूपी को त्वरित तू ग्रहण कर॥

[श्लोकार्थः] हे भाई! स्वाभाविक बल सम्पन्न ऐसा तू आलस्य छोड़कर, उत्कृष्ट समतारूपी कुलदेवी का स्मरण करके, अज्ञानमन्त्री सहित मोहशत्रु का नाश करनेवाले इस सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को शीघ्र ग्रहण कर।

गाथा - १०४ पर प्रवचन

गाथा १०४।

सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि।
आसाए वोसरित्ता णं समाहि पडिवज्जए।।१०४।।

'**खामेंमि सव्वे जीवा**' आता है न?

समता मुझे सब जीव प्रति वैर न किसी के प्रति रहा।
मैं छोड़ आशा सर्वतः धारण समाधि कर रहा॥१०४॥

यहाँ (इस गाथा में) अन्तर्मुख परम-तपोधन की भावशुद्धि का कथन है। जो साधु अन्तर्मुख भगवान अन्तर में पूरा स्थित है, उस पर जिसकी दृष्टि है। अन्तर्मुख... आहाहा! वह पुण्य और पाप के भाव से दृष्टि उठ गयी है। शरीर से तो दृष्टि उठ गयी है। वह तो जड़ मिट्टी अजीव है, श्मशान की राख है। आहाहा! जिसे **अन्तर्मुख परम-तपोधन की भावशुद्धि का कथन...** अन्तर्मुख। बहिर्मुख में पुण्य और पाप तथा उनके निमित्त। यह तो अन्तर्मुख प्रभु स्वयं विराजमान है। भगवान स्वयं अन्दर परमेश्वर है। परमेश्वर न होवे तो परमेश्वर पर्याय में आयेगा कहाँ से? बाहर से कुछ आनेवाला है लटकता हुआ? आहाहा! यह परमेश्वर है। वह अन्तर्मुख है। अन्तर्मुख है। विकल्प से, राग से भिन्न अन्दर है। उसमें **अन्तर्मुख परम-तपोधन की भावशुद्धि...** ऐसे सन्तों की भावशुद्धि का इसमें कथन है। आहाहा!

जिसने समस्त इन्द्रियों के व्यापार को छोड़ा है... यह इन्द्रियाँ जड़-मिट्टी। आँख, कान यह मिट्टी है। धूल, मिट्टी धूल-धूल है। इसका **व्यापार को छोड़ा है...** आहाहा! भावेन्द्रिय का भी जिसने व्यापार छोड़ा है। जो एक-एक इन्द्रिय एक-एक का ज्ञान करती है, ऐसी भावेन्द्रिय का भी व्यापार छोड़ा है। **ऐसे मुझे...** अब मुनिराज स्वयं कहते हैं। **भेदविज्ञानियों तथा अज्ञानियों के प्रति समता है;...** कहते हैं कि समस्त इन्द्रियों का व्यापार छूट गया है। अतीन्द्रिय आनन्द भगवान के अनुभव में मैं हूँ, इसलिए भेदज्ञानी कोई समकिती पाँचवें, छठवें या चौथे गुणस्थान में ज्ञानी हो या (कोई) अज्ञानी हो, दोनों के प्रति समता है। आहाहा! '**खामेमि सव्वे जीवा**' आता है न? '**सव्वे जीवा**' आहाहा! समता है। मैं तो आत्मा हूँ। अतीन्द्रिय आत्मा हूँ। इन्द्रियाँ ही मेरी नहीं तो उनका व्यापार मेरा कहाँ से? आहाहा!

अतीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, ऐसे मुझे **भेदविज्ञानियों...** अर्थात् ज्ञानियों के प्रति **तथा अज्ञानियों के प्रति समता है;...** चाहे तो केवलज्ञानी हो तो भी मुझे समता है। परद्रव्य के प्रति लक्ष्य जाए तो राग होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान का स्मरण और भगवान याद आवे, तो भी राग होता है, वह शुभराग है, वह धर्म-बर्म नहीं। आहाहा! इसलिए... है न? **ऐसे मुझे भेदविज्ञानियों...** अर्थात् समकिती। पाँचवें, छठवें... मुनि आदि। सबके प्रति और अज्ञानियों के प्रति समता। भले अज्ञानी हो। विपरीत

श्रद्धावाला अज्ञानी अनादि से पड़े हैं, इस जाति के भले हों, परन्तु मुझे उनके प्रति समता है। आहाहा!

भगवान के प्रति राग नहीं और अज्ञानी के प्रति द्वेष नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है ? **समता है;...** इसका नाम समता। इसका नाम प्रत्याख्यान, इसका नाम शुद्धोपयोग... आहाहा! कठिन काम है। ऐसी समता। **मित्र-अमित्ररूप (मित्ररूप अथवा शत्रुरूप) परिणति के अभाव के कारण...** मुझे कोई मित्र या कोई शत्रु है ही नहीं। मेरी परिणति में, अवस्था में, दशा में **मित्र-अमित्ररूप (मित्ररूप अथवा शत्रुरूप) परिणति के अभाव के कारण मुझे किसी प्राणी के साथ बैर नहीं है;...** चाहे वह प्राणी निन्दा करे या प्रशंसा करे, मुझे किसी के प्रति बैर नहीं है। वे आत्मा हैं, वे आत्मा वस्तुरूप से भगवान है। पर्याय में भान नहीं है। वस्तुरूप से भगवान है, इसलिए सबके प्रति मुझे बैर नहीं है। आहाहा!

सहज वैराग्यपरिणति के कारण... स्वाभाविक वैराग्य। अकेला स्त्री, पुत्र और दुकान छोड़ दिये, इसलिए वैरागी-ऐसा नहीं है। अन्तर के स्वभाव के अनुभवसहित जो राग से पृथक् पड़कर वैराग्य करे, वह वैराग्य। स्त्री, पुत्र, दुकान छोड़कर बैठे, इसलिए वैरागी है, (ऐसा नहीं है)। इससे भगवान इनकार करते हैं। पुण्य और पाप के भाव से जो विरक्त है, वह वैरागी है। पुण्य-पाप के अधिकार में आ गया न ? समयसार, पुण्य-पाप के अधिकार में। आहाहा! बात-बात में अन्तर है। अरे रे! चौरासी के अवतार करते-करते अनन्त काल गया। कभी इसने आत्मा का विश्वास नहीं किया। आत्मा क्या है, इसकी विस्मयता, आश्चर्यता ही नहीं आयी। आत्मा की आश्चर्यता ही नहीं आयी और दुनिया की आश्चर्यता नहीं छूटी। आहाहा! स्त्री जरा अच्छी मिले, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। आहाहा! अब वह तो आत्मा अलग, तुझसे उसका शरीर अलग, तुझे और उसे क्या लेना-देना ? आत्मा को स्त्री कैसी और आत्मा को पुत्र कैसा ? आहाहा! कठिन काम है। बोलने में बोला जाता है। पहिचान करनी हो तो ऐसा कहा जाता है कि यह मेरा पुत्र है, ये मेरे घरवाले हैं। यह तो कथनमात्र है। मान्यता में होवे तो मिथ्यादृष्टि है। वह जैन नहीं।

जिसकी मान्यता में यह मेरी पुत्री है, मेरी स्त्री है, मेरा पुत्र है—ऐसी मान्यता है, वह

तो मिथ्यादृष्टि है, जैन नहीं। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं। जैन तो राग को जीतकर ज्ञानस्वरूप में आवे, उसे जैन कहते हैं। जैनश्रुत है न? जैन में जीतना होता है कि राग और पुण्य को जीतकर उनसे रहित होकर आत्मा में आवे तो वह जैन कहलाता है। बाकी सब व्यर्थ कहलाते हैं। आहाहा! यह बात सुनी नहीं होगी, कभी सुनी नहीं होगी। दुनिया की पाप की कथाएँ लगाकर... आहाहा!

मुमुक्षु : हमें कोई मिले नहीं करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मिलता है या नहीं अब? आहाहा!

हमारे वहाँ दुकान पर ऐसा था। साधु आवे तो मैं भगत कहलाता था (तो) दुकान छोड़ दूँ। दूसरे सब आठ बजे पूरा धन्धा पूर्ण हो जाए रात्रि में, फिर जाते थे। साधु कहे - रातड़िया आये। बस, रात्रि को निवृत्त होकर घण्टे भर सुनने जाए और कहनेवाले भी कथाएँ करे। कैसी? कथा-वार्ता। इसने व्रत पालन किये थे, उसने उपवास किये थे, उसने यह किया था... उसने यह किया था... धूलधाणी। कहनेवाले ऐसे थे। दरियापरी एक साधु आये थे। अहमदाबाद में दरियापरी एक है न? यहाँ बहुत साधु आते थे। पालेज में बीच में आया न? भरुच और बड़ोदरा के बीच मुम्बई जाते हुए पालेज, वहाँ रास्ते में ही है। सब ऐसी बातें करे। 'भूदरजी तुमको भूला रे, भटकता हूँ भव में।' भूदरजी तुमको भूला या आत्मा को भूला? आहाहा!

स्वाभाविक **वैराग्यपरिणति के कारण...** वैराग्य के लिये स्वाभाविक शब्द प्रयोग किया है। यह स्वाभाविक शब्द ऐसा प्रयोग किया है कि शुभ और अशुभ जो पुण्य-पाप के भाव, उनमें जो अनादि से रक्त था, उनसे विरक्त हुआ, उसे वैरागी कहा जाता है। आहाहा! **सहज वैराग्यपरिणति के कारण मुझे कोई भी आशा नहीं वर्तती;...** आहाहा! कुछ ऐसा मान मिले, इज्जत मिले, अमुक मिले, धूल में, इज्जत में... आहाहा! वह स्वयं मूली में और प्याज में पड़ा था। चार पैसे सेर रींगण। तब। अब तो अभी महँगा हो गया लगता है। चार पैसे सेर रींगण ले और छोटी लड़की साथ में हो। इस लड़की को यह प्याज देना। मूली का कान्दा मुफ्त में। कान्दे में स्वयं बैठा हो। अनन्त भव किये, उसमें अन्दर बैठा था। मुफ्त में गया। आहाहा! पहले ऐसा आता था। अभी तो रींगण महँगे हो गये हैं। पहले तो चार पैसे सेर, तीन पैसे सेर था। अब महँगा हो गया।

मुमुक्षु : तब लोगों के पास पैसे नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे कम थे। पैसे की कीमत भी कम थी। अधिक कीमत थी। अभी माल की कीमत बढ़ गयी है। बाजरा, चावल का भाव बढ़ गया। पैसे की कीमत कम। उस समय के लाख और अभी के पच्चीस लाख दोनों समान। क्योंकि वह सब भाव बढ़ गया तो उस प्रमाण वह खर्च करे। सब फेरफार... फेरफार.. फेरफार... आहाहा!

यहाँ कहते हैं **वैराग्यपरिणति के कारण मुझे कोई भी आशा नहीं वर्तती;...** आहाहा! शिष्य हो, सम्प्रदाय बढ़े, ऐसी कोई आशा नहीं है। आहाहा! बननेवाला हो, वह बनो। मुझे और पर को कोई सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! **परम समरसीभावसंयुक्त परम समाधि का मैं आश्रय करता हूँ...** आश्रय शब्द आया। **परम समरसीभावसंयुक्त...** समरसी, समता, वीतरागता। पुण्य-पापरहित वीतरागता। ऐसा **परम समरसीभावसंयुक्त परम समाधि का मैं आश्रय करता हूँ...** पर्याय की बात है। वह अशुभ टालने को रखा है।

परम समाधि का मैं आश्रय करता हूँ... द्रव्य का आश्रय है, वह तो मूल वस्तु और यहाँ तो पर्याय में समाधि-शान्ति है, उसका ज्ञान करता हूँ। आलम्बन लेता हूँ अथवा है, ऐसा। आहाहा! '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' आता नहीं है? लोगस्स में आता है। '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' अर्थ की किसे खबर होती है? लोगस्स में आता है '**एवं मए अभिथुआ**' है?

मुमुक्षु : रट गये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रट गये थे?

'**एवं मए अभिथुआ विहुयरयमला**' कुछ अर्थ की खबर नहीं होती और यह फिर घड़ी लेकर बैठ जाए। सामायिक हो गयी। धूल भी नहीं। सामायिक कैसी और धर्म कैसा? आहाहा! लींबड़ी में दशाश्रीमाली और वीसाश्रीमाली के बीच विवाद हुआ था। लींबड़ी-लींबड़ी तुम्हारे। दो उपाश्रय हैं न? एक संघवी का उपाश्रय और एक सेठ का उपाश्रय। उसमें दशाश्रीमाली की महिला सामायिक करने बैठी होगी। उसमें वह वीसाश्रीमाली के साथ विवाद था। वहाँ यह आया '**एवं मए अभिथुआ विहुयरयमला**' विहा रोई मलया। उसे ऐसा अर्थ किया। विहा रोई मलया। परन्तु वह कहे - अपना विवाद इस लोगस्स में

कहाँ से आया ? इतना भान नहीं होता और हो गयी सामायिक। मरकर कौवे में और बकरे में (भटकनेवाले) हैं। आहाहा!

'**विहुयरयमला**' आता है ? '**विहुय**' अर्थात् टाले हैं, प्रभु! आपने '**विहुय**' विशेषरूप से टाले हैं। '**रयमला**' कर्मरूपी रज और राग-द्वेष जो परिणाम, वह मल। पुण्य-पाप के विकारी भाव, वह मल और कर्मरज। '**रयमला**' वह रज और मल दोनों टाले हैं, प्रभु! लोगस्स में आता है। उसके बदले ऐसा अर्थ करे। परन्तु इसमें कहाँ है यह ? अर्थ की खबर नहीं होती। यहाँ तो **परम समाधि का मैं आश्रय करता हूँ...** विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)